(ii) जिस खेत में सूत्रकृमि की संख्या ज्यादा हो उसमें कार्बोफ्यूरान 3जी० 25-30 कि०ग्रा० या फोरेट 10 जी० 10 कि०ग्रा० प्रति हेक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला देना लाभप्रद होगा।

(iii) कार्बोसल्फान की उचित मात्रा से बीजोपचार करना लाभप्रद होगा।

8. मोजेक एवं बौना रोग– मोजेक रोग में ऊपर की फुनगियाँ मुड़कर सूख जाती हैं और फलन कम होती हैं, जबकि बौना विषाणु रोग में पौधे छोटे, पीले, नारंगी या भूरा दिखाई पड़ते हैं। यह रोग लाही द्वारा स्वस्थ्य पौधे तक पहुँचाया जाता है। इसके अलावे मिट्टी में लोहे की कमी और लवण की अधिकता भी पौधे में रोग के लक्षण के रूप में प्रकट होते हैं, जो समान रूप से नजर नहीं आते हैं।

प्रबंधन–

(i) विषाणु रोग के फैलाव को रोकने के लिए लाही कीट का नियंत्रण हेतु एलो-स्टीकी-ट्रैप (पीला फंदा) एक हेक्टर में 20 फंदा लगावें। यदि इस कीट का पौधों पर एक समूह बन गया हो तो किसी अर्न्तव्यापि कीटनाशी का छिड़काव करना चाहिए।

(ii) लोहे के कमी वाले क्षेत्र में 10-12 कि०ग्रा० फेरम सल्फेट प्रति हे० की दर से अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला देना चाहिए।

चना में लगने वाले मुख्य कीट

1. कजराकीट– कट वर्म (कजराकीट) कभी-कभी चना उत्पादक क्षेत्रों में कटवर्म समूह के कीटों का आक्रमण हो जाता है। कजरा कीट या पिल्लू 3-4 से०मी० लम्बा काले भूरे रंग का चिकना एवं मुलायम होता है। दिन में पिल्लू मिट्टी में छुपे रहते हैं और शाम को निकलकर पौधों को काटते हैं। यह कीट बहुभक्षी है और दलहनी के अलावे मक्का, आलू, तम्बाकू आदि में क्षति करता है।

प्रबंधन–

(i) खड़ी फसल क्षति नजर आने पर खेत में कुछ-कुछ दूरी पर खर-पतवार का ढ़ेर लगा देना चाहिए। सबेरे होते ही कीट इन ढ़ेरों में छिप जाता है जिन्हें चुनकर नष्ट कर देना चाहिए।

(ii) खरी फसल में क्लोरोपाईरी फॉस 20% ई०सी० 25 लि० या इण्डोसल्फान 35% ई०सी०, क्युनलफॉस 25% ई०सी० 1 लि० प्रति हेक्टेयर की दर से शाम में छिड़काव करना लाभप्रद होता है।

(iii) सिंचाई दिए जाने वाले फसलों में इन कीट का आक्रमण होने पर सिंचाई कर देना चाहिए।

2. फली छेदक कीट (हेलीकोभरपा आर्मिजेरा)– पौधे में फली आने के पूर्व पिल्लू पत्तियों को खा जाते हैं। फली आने के बाद कीट अपना मुख्य भाग फली के अन्दर डाल कर दानों को खाते हैं। तथा उसके शरीर का कुछ भाग फली के बाहर लटका रहता है। कीट के स्वभाव के अनुसार इसे घघरा, फोका, लड़का, आदि नामक नामों से जानते हैं।

प्रबंधन–

(i) मध्य नवम्बर से यदि किसान दस फेरोमोन फंदा, जिसमें हेलिका भरपा अर्मीजेरा का लियोर लगा हो प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में लगावें। इससे अधिकतर नर पतंगा मारे जाएंगे और उनका प्रजनन बाधित होगा, जिसके फलस्वरूप कीटों की संख्या में कमी आएगी।

(ii) यदि प्रति ट्रेप 6 नर कीट प्रतिदिन फसते हैं, तो इसका मतलब निकलता है कि अधिक संख्या में अंडा दिए जाने वाले हैं। इस स्थिति में उपलब्ध रहने पर 50 हजार प्रति हेक्टेयर की दर से ट्राईकोग्रामा छोड़े यह कीट फली छेदक के अण्डे में अपना अण्डा डाल देता है जिससे ट्राईकोग्रामा कीट निकलते हैं। NPV (न्यूक्लीयर पोलीहाईड्रोसिस वायरस) 250, एल०ई० का घोल बनाकर प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

(iii) प्रकाश फंदा लगाकर पतंगों को नष्ट किया जाना चाहिए।

(iv) पंक्षी बैठका (वर्ड पर्चर) खेत में बांस का "T" अकार का बीस पंक्षी बैठिका (वर्ड पर्चर) प्रति हेक्टेयर लगाना चाहिए। इस पर पंक्षी बैठते हैं तथा पिल्लुओं को भक्षण कर फसल में इनकी संख्या को नियंत्रित रखते हैं।

(v) **इसके नियंत्रण के लिए–**

- इण्डोसल्फान 35% ई०सी० 1-1.5 ली०/हे० की दर से या
- मोनोक्रोटोफास 36% तरल 750 मि०ली०/हे० की दर से या
- डायमोथोएट 30% ई०सी० 250-300 मि०ली०/हे० की दर से या
- क्यूनलफोस 25% ई०सी० 750 मि०ली० से एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से या
- साईपरमेथिन 20% ई०सी० 250-300 मि०ली०/हे० की दर से।

उक्त कीटनाशियों का प्रयोग तब करें, जब बाजार में नीम आधारित या जीवाणु आधारित कीटनाशी उपलब्ध न हो। फली-छेदक कीट का आर्थिक क्षति स्तर प्रति 5 पौधों पर एक पिल्लू है।

3. चने का गिडार– यह कीट हरे रंग का होता है जो कोमल पत्तियों को खाकर क्षति पहुँचाता है तथा फलियों को भी नुकसान करता है।

प्रबंधन–

(i) पंक्षी बैठिका (वर्ड पर्चर) 20 प्रति हेक्टेयर लगाकर इस कीट पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

(ii) फलीछेदक में बताये गये किसी एक कीटनाशी का छिड़काव करना चाहिए।

आलेख : लाल बचन राम, दलहन विकास पदाधिकारी, टालक्षेत्र बिहार, बड़हिया
प्रकाशक : उप कृषि निदेशक (सूचना), बिहार, पटना
दूरभाष : 0612-2928402, E-mail : infoagri-bih@nic.in
वेबसाइट : www.krishi.bih.nic.in

मुद्रक : विद्या प्रिन्टर्स, शिवपुरी, पटना-23, M-9234849923

बिहार सरकार

कृषि विभाग

समेकित कीट रोग प्रबन्धन आधारित

चना की खेती

परिचय :

चना रब्बी मौसम में ऊपजायी जाने वाली प्रमुख दलहनी फसल है। चना उत्पादन आच्छादन में भारत का विश्व में पहला स्थान है। देश में दलहनी फसलों में चना 37% क्षेत्र में लगाया जाता है और उत्पादन में इसका 50% योगदान है। इसमें 21.1% प्रोटीन, 61.5% कार्बोहाइड्रेट, 4.5% वसा, प्रचुर मात्रा में कैल्शियम, लोहा तथा नाइसीन पाया जाता है।

जलवायु– बिहार के सभी क्षेत्रों की जलवायु इसके लिए उपयुक्त है।

मिट्टी– सभी प्रकार के मिट्टियों में इसकी खेती की जा सकती है, पर दोमट मिट्टी अति उत्तम है।

बोने का समय– मध्य अक्टूबर से अंतिम नवम्बर (विशेष परिस्थिति में पूसा 240 एवं पूसा 372 प्रभेद धान काटने के बाद 15 दिसम्बर तक) बुआई कर दें।

बीज दर– 60–65 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

संस्तुत प्रजातियाँ– पूसा 362, पूसा 256, पूसा 1003, उदय, के०डब्लू०आर० 108, गुजरात चना 4, आर०ए०यू० 52

बीजोपचार– बुआई से पूर्व एक पैकेट राइजोबियम कल्चर प्रति 10 किलोग्राम बीज दर से 100 ग्राम गुड़, आधा लीटर पानी में घोलकर गर्म करके ठंडा होने पर राइजोबियम कल्चर मिला कर बाल्टी में 10 किलोग्राम बीज डालकर घोल में मिलाकर तथा कुछ देर छाया में सुखाकर 1 दिन तक रखने के बाद बुआई करें।

खाद एवं उर्वरक– 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 कि०ग्रा० फॉस्फोरस तथा 20 कि०ग्रा० पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से व्यवहार करें।

सिंचाई– बुआई के 45–60 दिन बाद सिंचाई करनी चाहिए।

खर–पतवार नियंत्रण– पेन्डमेथालिन 75 ग्राम से 1.25 कि०ग्रा० की दर से बुआई के 72 घंटे के अन्दर छिड़काव करने से मौसमी खर–पतवार नष्ट हो जाते हैं। जिन खेतों में गेहूँ के मामा, जंगली जई का प्रकोप हो वहाँ आईसोप्रोट्यूरान की 1 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के तुरंत बाद डालनी चाहिए।

चना में लगने वाले प्रमुख रोग–

1. ऊकठा रोग– मिट्टी में पर्याप्त नमी रहने के बावजूद भी पौधा का सुखना उखड़ा या उकठा रोग कहा जाता है। जब 3 से 5 सप्ताह के बिचड़े इस रोग से आक्रान्त हो जाते हैं, तो वे जमीन पर सो जाते हैं, लेकिन उनका हरापन बना रहता है। जमीन से नीचे का तना अनियमित ढंग से सिकुड़ जाता है, जो लगभग 2 से 5 सें०मी० लम्बा हो सकता है। पौधों को बीच से फाड़ने पर नीचे के भीतरी ऊत्तक (Tissue) काले नजर आते हैं।

प्रबंधन–

(i) खेत को ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई कर बिना पाटा दिए छोड़ देना चाहिए।

(ii) लगातार तीन (3) वर्षों तक फसल चक्र अपनाएं, यानि दलहनी के बदले तेलहनी, गेहूँ, मक्का लगावें।

(iii) ऊखड़ा रोगरोधी किस्मों का चुनाव करें।

(iv) थिरम, कैप्टान, ट्राईकोडरमा की अनुशंसित मात्रा से बीजोपचार करें।

(v) ट्राईकोडरमा के अनुशंसित (2 से 5 किलोग्राम) मात्रा से मिट्टी शोधन करना लाभप्रद होगा।

बीज को मिट्टी में 8 से 10 से०मी० गहराई में गिराने से उखड़ा रोग का प्रभाव कम होता है।

2. ग्रेमोल्ड– यह रोग चना में वोट्राइटिस साइनेरिया नामक फफूंद से होता है। इस रोग में पौधों की पत्तियों, टहनियों एवं फूलों पर काले या भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। यह रोग पौधों में पूर्ण वानस्पतिक वृद्धि के समय लगता है। आद्र मौसम और पौधों में ज्यादा बढ़वार इस रोग की वृद्धि के लिए उपयुक्त होता है। प्रभावित भाग तने से अलग हो जाते हैं। इस रोग से प्रभावित पौधों पर लगी फलियों में प्राय: दाने नहीं बनते हैं। अगर दाने बनते भी है तो सिकुड़े होते हैं।

प्रबंधन–

(i) बीजोपचार कर बीज लगावें।

(ii) खेत को खर–पतवार से मुक्त रखें।

(iii) अधिक घनी बुआई न करें।

(iv) कैप्टान 50 प्रतिशत या थिरम 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2 किलोग्राम या मैनकोजेब- 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 3 किलोग्राम का प्रति हेक्टेयर छिड़काव किया जा सकता है।

3. स्केलेरोटिनिया ब्लाईट– चना में यह रोग स्केलेरोटिनिया नामक फफूंद से होता है। प्रारम्भिक अवस्था में यह रोग जमीन तल के तना भाग में दिखाई पड़ता है। प्रभावित पौधे पहले पीले–भूरे तथा बाद में सूखने लगते हैं। ऐसी सूखती हुई टहनियाँ या पौधे कॉलर भाग में या अन्य किसी भाग में सड़े नजर आते हैं।

प्रबंधन–

(i) बीजोपचार कर बीज लगावें। (ii) पौधे के बीच दूरी रखें।

(iii) फसल चक्र अपनायें।

4. हरदा रोग– यह रोग यूरोमाईसीज साइसरीज (एरीटीनी) नामक फफूंद से होता है।

पौधों में वानस्पतिक वृद्धि ज्यादा होने, मिट्टी में नमी बहुत बढ़ जाने और वायुमंडलीय तापमान बहुत गिर जाने पर इस रोग का आक्रमण होता है। पौधों के पत्तियों, तना, टहनियों एवं फलियों पर गोलाकार प्यालिनुमा सफेद भूरे रंग का फफोले बनते हैं। बाद में तना पर के फफोले काले हो जाते हैं और पौधे सूख जाते हैं। पौधों पर इस रोग का आक्रमण जितना अगात होता है, क्षति उतना ही अधिक होती है। इस रोग से 80 प्रतिशत तक क्षति पाई गई है। फसल में यह रोग हर वर्ष नहीं आता है। पौधें में रोग के आक्रमण के बारे में तब जान पाते हैं, जब फफूंद प्रजननता अवस्था में रहता है। इसलिए फफूंद के लिए उपयुक्त वातावरण बनते ही सुरक्षात्मक ऊपचार करना चाहिए।

प्रबंधन–

(i) रोगरोधी प्रभेध का चुनाव करना चाहिए।

(ii) फफूंद नाशी से बीजोपचार करना चाहिए।

(iii) फफूंद के उपयुक्त वातावरण बनते ही मेनकोजेब 75% घुलन चूर्ण 2 किलोग्राम का सज्ञात्मक छिड़काव करना चाहिए।

5. स्टेमफिलियम ब्लाईट– यह रोग स्टेमफिलियम सरसिनीफार्म नामक फफूंद से होता है। पत्तियों पर बहुत छोटे भूरे काले रंग के धब्बे बनते हैं। पहले पौधे के निचले भाग की पत्तियाँ आक्रान्त होकर झड़ती हैं और रोग ऊपरी भाग पर बढ़ते जाता है। खेत में यह रोग एक स्थान से शुरू होकर धीरे–धीरे चारों ओर फैलता है। तीव्र आक्रमण की अवस्था में पत्तियाँ झड़ जाती हैं और फलन नहीं हो पाता है।

प्रबंधन–

(i) उपयुक्त वातावरण बनने पर चौकन्ना रहें तथा शुरू में ही अक्रान्त पौधों को फसल से निकाल कर जला दें।

(ii) अनुशंसित फफूंदनाशी से बीजोपचार करना चाहिए।

(iii) उपयुक्त वातावरण बनते ही मैनकोजेब 75% 2 कि०ग्रा० या कॉपर ऑक्सीक्लोराईड 50% 3 कि०ग्रा० प्रति हेक्टेयर की दर से सुरक्षात्मक छिड़काव करना चाहिए।

6. पाला– वातावरण का तापमान बहुत कम हो जाने और रात में पछुआ हवा चलने पर पाला गिरने की संभावना बढ़ जाती है। तापमान बढ़ने पर कम आक्रान्त पौधे स्वस्थ रह जाते हैं, लेकिन अधिकतर मर जाते हैं।

प्रबंधन–

(i) पाला के लिए उपयुक्त वातावरण बनने पर खेत की मेड़ों पर धुआ करना चाहिए।

(ii) सिंचाई देने लायक फसलों की हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

7. मूल गाँठ सूत्रकृमि रोग– यह रोग मिलाईडोगाइनी स्पेसीज नामक सूत्रकृमि से होता है। पौधे की जड़ें जहाँ–तहाँ मोटी हो जाती है। जो बैक्टेरियल जबकि सूत्रकृमि के प्रवेश से जड़ें मोटी हो जाती हैं। जड़ों में प्रवेश कर सूत्रकृमि अपना पोषण लेने के साथ ही इसके आवागमन में बाधक बनते हैं। इसलिए पौधों में असमान वृद्धि दिखाई देती है। प्रभावित पौधों में बौनापन, पीलापन दिखता है तथा उपज भी कम मिलता है।

प्रबंधन–

(i) उचित फसल चक्र में मक्का को सम्मिलित करें।